Introduction

:: प्राक्कथन ::

साहित्य का अध्ययन प्रकारान्तर से मनुष्य का ; उसकी आशा-आकांक्षाओं का , उसकी युग-संचित भावनाओं ~~क्क~~ और मान्यताओं का ; उसकी वासना और लालसा का ; उसके सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, नैतिक संघर्ष का अध्ययन और अनुशीलन (वह) करता है । मनुष्य का चोला तो हमें जन्म से ही मिल जाता है , पर मनुष्य के रूप में हम संस्कारित होते हैं कला और साहित्य के द्वारा ही । कला-साहित्य रहित मनुष्य और पशु में अधिक अंतर नहीं रह जाता । अब किसीको यह प्रश्न हो सकता है कि हमारे आदिवासी, अशिक्षित और पिछड़े वर्ग के लोग कहां साहित्य पढ़ने जाते हैं ? तो क्या वे मनुष्य नहीं है ? क्या वे पशु हैं ? वस्तुतः यह एक भ्रान्त धारणा है कि वे साहित्य तत्व से रहित हैं । उनका अपना पीढ़ियों द्वारा संचित व संरक्षित साहित्य होता है , जिसे हम "लोक-साहित्य" की संज्ञा देते हैं । वैसे मनुष्य का अध्ययन तो मानव-जीवन के अनुभव से ही होता है , प्रत्यक्षतः अनुभव से होता है , तथापि उसकी अपनी सीमाएं और मर्यादाएं हैं , क्योंकि जीवन निरंतर प्रवहमान देशकाल-सापेक्ष है और काल की कोई सीमा नहीं है । अपने सीमित जीवन में मनुष्य प्रत्यक्षतः कितना अनुभव प्राप्त कर सकता है , अतः उसे दूसरों के अनुभवों से भी काम चलाना पड़ता है और इस प्रकार उसके अनुभव का व्याप काफी बढ़ जाता है । गुजरात में बैठे-बैठे वह सुदूर दक्षिण तथा बिहार-बंगाल के जीवन को , और यदि विश्व-साहित्य के विचार की दृष्टि से सोचे तो विश्व के किसी भी कोने के जीवन की धड़कनों को हम उसके साहित्य के द्वारा पा सकते हैं । अतः साहित्य की उपादेयता असंदिग्ध-तया निश्चित है ।

मानव-जीवन की अभिव्यक्ति के लिए कथा-साहित्य सर्वाधिक अनुकूल रहता है , अतः शैशव से ही मेरी रूचि कथा-साहित्य के प्रति अधिक रही । शुरू में प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिकजी, अश्कजी , प्रसादजी जैसे लेखकों की कहानियों से मेरे साहित्य-संस्कार परिपोषित हुए । यहां

एक बात का उल्लेख आवश्यक हो जाता है कि मेरे परिवार का परिवेश साहित्यिक नहीं था । गुजराती और सिन्धी व्यावसायिक मनःस्थिति से युक्त प्रजाएं मानी जाती रही हैं । मेरे पिता तथा भाई भी इसी प्रकार की व्यावसायिक चिंतना से जुड़े हुए थे । परन्तु मां की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन के कारण ही मैं म.स. विश्वविद्यालय की उच्च-शिक्षा को प्राप्त कर सकी । इसमें प्रो. हर्षद त्रिवेदी, डा. सुभाष दवे, डा. नितिन मेहता ‖गुजराती विभाग‖ ; डा. मदनगोपाल गुप्त, डा. दयाशंकर शुक्ल, डा. रमणलाल पाठक , डा. प्रतापनारायण झा , डा. पारूकांत देसाई , डा. कु. बाफना , डा. बंसीधर शर्मा , डा. आर.जी. शर्मा , डा. के.एम. शाह ‖हिन्दी विभाग‖ जैसे गुरुजनों के योगदान का अतीव महत्व है , अतः उनके प्रति मेरा मन सदैव श्रद्धा-विनत रहेगा ।

एम.ए. द्वितीय खण्ड में विशेष-पत्र के रूप में मैंने "उपन्यास" के साहित्य-प्रकार को लिया था । अतः एम.ए. के उपरांत पी-एच.डी. करने का विचार मन में आया तो सर्वप्रथम उपन्यास-साहित्य पर ही दृष्टि गई । हिन्दी विभाग के कई प्राध्यापकों से मिली तो उन्होंने छः महीने से लेकर एक साल तक की अवधि पंजीकरण के लिए बताई , तब डा. राजेन्द्र बी. भट्ट तथा भाईश्री लियाकतअली सैयद ‖पप्पू‖ के प्रयत्नों और प्रोत्साहन से मेरी भेंट डा. पारूकांत देसाई से हुई । विशेष-पत्र "उपन्यास" वे ही पढ़ाते थे , अतः मैं तो उन्हें भली-भांति जानती थी , पर वे भी मुझे जानते हैं कि नहीं उस विषय में मैं संदिग्ध थी , अतः मन में कुछ भय भी था ; परन्तु डा. देसाई की आत्मीयतापूर्ण बातचीत से वह डर आध घण्टे में ही काफूर हो गया । इसके बाद विषय-चयन के लिए बैठकों का सिलसिला शुरू हुआ । मैं प्रेमचन्द-युग के किसी लेखक पर काम करना चाहती थी , अतः अंततोगत्वा यही विषय तय हुआ — " ऋषभचरण जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व " ।

पंजीकृत होने के पश्चात् ही शनैः शनैः मैं इस तथ्य से अवगत होने लगी कि हिन्दी में शोध-अनुसंधान का कार्य इतना सरल नहीं जितना

मैं समझती थी । यह तो टेढ़ी खीर है । पर डाक्टर साहब की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से मैं इसके नाना सोपानों को चढ़ती गई । सर्वप्रथम तो उन्होंने मुझे विभाग में हुए एतद्विषयक प्रबंधों को देख जाने के लिए कहा । उसके अनुसार डा. भारद्वाज, डा. फकीरभाई पटेल , डा. पारूकांत देसाई , डा. वामन अहिरे , डा. श्रीमती इन्दु शुक्ला प्रभृति के प्रबंधों को मैं देख गई । तदुपरांत शोध-प्रविधि से परिचित कराते हुए मुझे एतद्विषयक कुछ ग्रंथों को पढ़ जाने का निर्देश मिला , जिसमें मैंने "हिन्दी अनुसंधान : स्वरूप और विकास" (सं. प्रो. भ.ह. राजूरकर तथा डॉ. राजमल वोरा) ; "शोध और सिद्धान्त " (डॉ. नगेन्द्र) ; "साहित्य : अध्ययन की दृष्टियां " (डा. उदयभानुसिंह , डा. रवीन्द्र श्रीवास्तव) ; "शोध-प्रविधि " (आचार्य विनयमोहन शर्मा) प्रभृति शोधपरक ग्रंथों का अध्ययन किया । अन्ततः चार वर्षों के कठोर परिश्रम तथा अध्यवसाय के उपरांत इस महार्णव को पार कर सकने में किंचित् सफल हुई हूं तो इसका श्रेय गुरुजनों को ही जाता है ।

ऋषभचरण जैन के समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययन का दो दृष्टियों से सविशेष महत्व है । एक तो यह कि प्रेमचन्द काल में प्रेमचन्द के युग-निर्माता व्यक्तित्व का कुछ ऐसा प्रभाव रहा कि उस काल के अन्य लेखकों पर बहुत कम ध्यान गया है , अतः प्रेमचन्दयुगीन प्रभावों के विश्लेषण हेतु भी उस युग के अन्य लेखकों पर शोध-अनुसंधान हो यह आवश्यक हो गया है । दूसरे प्रेमचन्दजी ने अपने लेखन में प्रायः शोषित वर्ग को लिया है , परन्तु जिन लोगों द्वारा निरीह जनता का शोषण हो रहा था, उस पर उनका ध्यान कम ही गया है । ऋषभचरण जी ने अपनी संवेदना शोषित वर्ग को देते हुए उन राजा-महाराजाओं , सामंत-सरदारों, जमींदारों, महाजनों के शोषक-गलीज जीवन को भी उकेरा है , ताकि यह सनद रहे कि जब देश में स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी जा रही थी और समाज में नव-जागरण की लहरियां चल रही थीं तब देश का यह वर्ग किन प्रवृत्तियों में व्यस्त था ।

अध्ययन के समीचीन सन्नियोजन तथा सगुम्फन के लिए प्रस्तुत प्रबंध को निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है :- §1§ विषय-प्रवेश , §2§ ऋषभचरण जैन : व्यक्तित्व , §3§ ऋषभचरण जैन : कृतित्व , §4§ ऋषभचरण जैन के उपन्यास , §5§ ऋषभचरण जैन की कहानियाँ , §6§ समस्याओं का निरूपण शिल्प एवं भाषिक-संरचना , §7§ उपसंहार ।

प्रथम अध्याय विषय-प्रवेश का है , अतः इसमें विषय की भूमिका की निर्मिति का प्रयास हुआ है । एक नवीन साहित्य-रूप के सन्दर्भ में उपन्यास की यथार्थधर्मिता तथा समाजधर्मिता को रेखांकित किया गया है । साथ ही साहित्य और विशेषतः कथासाहित्य तो समाज का मुख और मस्तिष्क उभय होते हैं , अतः तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियों का आकलन भी आवश्यक हो जाता है । तत्कालीन युगबोध के निर्माण में आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, ब्रह्मोसमाज, थियोसोफीकल सोसायटी प्रभृति संस्थाओं व आंदोलनों तथा दूसरी ओर राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, गोपालकृष्ण गोखले , महादेव गोविंद रानड़े , पंडिता रमाबाई , ईश्वरचन्द्र विद्यासागर , ज्योतिबा फूले प्रभृति के कृतित्व को नकारा नहीं जा सकता । प्रस्तुत अध्ययन ऋषभचरण जैन के कृतित्व को लेकर है , अतः प्रेमचन्दकालीन अन्य लेखकों का भी संक्षिप्त ब्यौरा देने का प्रयत्न किया गया है , जिनमें विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक , पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" , राजा राधिकारमण प्रसादसिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी , प्रतापनारायण श्रीवास्तव , उषादेवी मित्रा , शिवरानीदेवी , वृन्दावनलाल वर्मा , आचार्य चतुरसेन शास्त्री , जयशंकर प्रसाद , सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" , सियारामशरण गुप्त प्रभृति मुख्य हैं । इन सबके बीच ऋषभजी के साहित्यिक कृतित्व को स्थापित किया गया है । तत्कालीन समसामयिकता के सन्दर्भ में नगरीकरण की प्रक्रिया , उसके प्रभाव और दुष्परिणाम , उच्चवर्गीय लोगों की विलासिता , मद्यपान , वेश्यावृत्ति आदि विभिन्न आयामों की भी चर्चा की गई है , क्योंकि ऋषभजी के साहित्य में समाज के उक्त वर्ग और उसकी कमजोरियों व विलासिता को बेपर्द करने का एक संनिष्ठ

प्रयास हुआ है ।

द्वितीय अध्याय ऋषभचरण जैन के व्यक्तित्व को लेकर चला है । एक जनवरी सन् 1911 को ग्राम सराय सदर , जिला बुलन्दशहर (उत्तर-प्रदेश) के एक मध्यवर्गीय सम्मानित दिगम्बर जैन परिवार में जन्मे तथा ग्यारह वर्ष की आयु में दिल्ली जैन समाज के प्रसिद्ध जैन विद्वान बैरिस्टर चम्पतराय द्वारा पौत्र-रूप में दत्तक लिए गए श्री. ऋषभचरण जैन का व्यक्तित्व विविधरंगी है । समाज की कुरीतियों का भण्डाफोड़ करने का जो क्रांतिकारी कार्य "उग्रजी" ने शुरू किया था , उसे उन्होंने और भी आगे बढ़ाया । जैनेन्द्रकुमार को लेखक बनाने में भी उनका बड़ा योग है । प्रस्तुत अध्याय में उनके व्यक्तित्व के बहुरंगी आयामों को स्पर्श किया गया है । प्रारंभिक जीवन तथा वंश-परंपरा, पारिवारिक उतार-चढ़ाव, शैशवकालीन प्रभाव , शिक्षा-दीक्षा , पारिवारिक जीवन , ऋषभ-जी का बाहरी व्यक्तित्व , आंतरिक व्यक्तित्व , मित्र-मंडली , साहित्य-सर्जना , उनका बहुआयामी व्यक्तित्व , संघर्षमय जीवन , गांधीवाद का प्रभाव , उनकी समाज-सुधारक प्रवृत्ति , मानव-धर्म की स्थापना विषयक उनके प्रयास , उनका नारी-विषयक दृष्टिकोण , उनमें स्थित मानव-सहज दुर्बलताएं , उनसे सम्बद्ध मित्रों के संस्मरण , व्यावसायिक आघात प्रभृति मुद्दों की विस्तृत पड़ताल की गई है ।

ऋषभजी का साहित्य-सर्जना काल सन् 1925 से सन् 1944 तक माना जा सकता है । तृतीय अध्याय में उनके समग्र कृतित्व पर दृष्टिपात किया गया है । उपन्यासकार , कहानीकार , अनुवादक , पत्रकार , साहित्यिक संस्थाओं के प्रबंधक और प्रकाशक , फिल्म-वितरक आदि उनके व्यक्तित्व के नाना आयामों को यहां उकेरा गया है । मौलिक उपन्यास व कहानियों के अतिरिक्त यहां उनकी अनूदित रचनाओं की भी चर्चा हुई है । हिन्दी का आधुनिक काल यहां उसकी उदीयमान अवस्था में था , ऐसी स्थिति में एक लेखक का यह भी दायित्व हो जाता है कि वह दूसरे साहि-त्य की महत्वपूर्ण रचनाओं को अनुवाद के माध्यम से अपने साहित्य में लाने का उपक्रम करें । ऋषभजी का यह प्रयास भी श्लाघनीय कहा जायेगा । प्रका-

शक एवं पत्रकार के रूप में भी उनका कृतित्वमहत्त्वपूर्ण है । प्रकाशक के रूप में अपने पुस्तकों का प्रकाशन तो किया ही , अन्य अनेक नवोदित लेखकों की पुस्तकों को प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहित किया । "चित्रपट" और "सचित्र दरबार" जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से भी उन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की । जैनेन्द्रकृत "सुनीता" का प्रथमतः प्रकाशन "चित्रपट" में धारावाहिक रूप में हुआ था । "फिल्म-वितरण " तथा "चित्रपट" और "रूपबानी" के कारण ऋषभजी को फिल्म-उद्योग का बहुरंगी अनुभव भी प्राप्त हुआ , जिसका आकलन उनकी कई रचनाओं में लक्षित किया जा सकता है । प्रस्तुत अध्याय में ऋषभजी के कृतित्व के इन सब आयामों को रेखांकित किया गया है । अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन के रूप में कुछ निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में उनके औपन्यासिक कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है । इसमें उनके निम्नलिखित उपन्यासों को विशेषतः अध्ययन का आधार बनाया गया है :-- §1§ मयखाना , §2§ हिज हाइनेस , §3§ तीन इक्के , §4§ हर हाइनेस , §5§ चम्पाकली , §6§ भाई , §7§ जनानी सवारियां , §8§ गदर , §9§ सत्याग्रह , §10§ मन्दिर-दीप , §11§ तपोभूमि , §12§ भाग्य , §13§ रहस्यमयी , §14§ दिल्ली का व्यभिचार , §15§ राजकुमार भोज । इनके अतिरिक्त "दिल्ली का कलंक " , "दुराचार के अड्डे " , "पैसे का साथी", "वेश्यापुत्र" और "मास्टरसाहब" प्रभृति उपन्यासों की भी कुछ चर्चा की गई है । अध्याय के अन्त में मूल्यांकन और निष्कर्ष दिए गए हैं ।

पंचम अध्याय ऋषभजी की कहानियों से सम्बद्ध है । यद्यपि ऋषभजी के चार कहानी-संग्रह हैं -- 1. दान तथा अन्य कहानियां , 2. बुर्केवाली तथा अन्य कहानियां , 3. अनासक्त तथा अन्य कहानियां, और 4. हड़ताल तथा अन्य कहानियां -- तथापि सम्प्रति केवल एक कहानी-संग्रह ही प्राप्त है -- दान तथा अन्य कहानियां -- अतः उसे अध्ययन का आधार बनाया गया है । हो सकता है , इन कहानियों में आज जैसी सांकेतिकता, कसाव और तराश न हो , लेकिन तब कहानी का

यह लक्ष्य भी नहीं था । कहानियां तब समाजसुधार और स्वतंत्रता-संग्राम का एक अत्यावश्यक हथियार थ ीं । इन कहानियों में मिलता है हमें तत्कालीन समाज का परिवेश , बोली-बानी, रहन-सहन, कुरीतियों और विकृतियों के खिलाफ जिहाद , अमीर-गरीब की दूरियां , अमीरों की रंग-रेलियां , देश के लिए की जाने वाली कुरबानियां , अनमेल विवाह, विधवा की स्थिति , और छुआछूत जैसी समस्याओं पर तीखे प्रहार । लेखक की संघर्ष-चेतना हमेशा नयी होती है और वही हमारी विरासत है । अतः प्रस्तुत अध्याय में दान , भय , दुनियादारी, स्वर्ग की देवी, संयोग, मन का पाप , कौड़ियों का हार , पांच रूपये का कर्जा , रखैल , सुधार की खोज , निग्रह और अंधी दुनिया जैसी उनकी प्रातिनिधिक रचनाओं का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है । अध्याय के अन्त में कुछ निष्कर्ष दिए गए हैं ।

छठा अध्याय ऋषभचरण जैन के साहित्य में समाकलित समस्याओं के निरूपण तथा शिल्प एवं भाषिक संरचना से सम्बद्ध है । समस्यामूलकता आलोच्य काल की शक्ति-सीमा है । इस युग के साहित्यकारों ने अपने युग की समस्याओं का समीचीन आकलन करके अपने साहित्यिक दायित्व का भलीभांति निर्वाह किया है । ऋषभजी के साहित्य में हमें पारिवारिक समस्याएं , सामाजिक समस्याएं , आर्थिक समस्याएं , वैयक्तिक या मनोवैज्ञानिक समस्याएं आदि का अच्छा आकलन मिलता है । प्रस्तुत अध्याय के आरंभ में इनकी सोदाहरण चर्चा की गई है । अध्याय के मध्य-भाग में ऋषभजी के कथासाहित्य की शिल्पगत विशेषताओं को लक्षित किया गया है । यद्यपि शिल्प की दृष्टि से विचार करें तो उनके कथा-साहित्य में हमें मुख्यतः दो विधियां उपलब्ध होती हैं -- वर्णनात्मक विधि और आत्मकथनात्मक विधि -- तथापि पूर्वदीप्ति , शब्द-सह-स्मृति, संभाषण, स्वप्न आदि अन्य प्रविधियों का प्रयोग भी लेखक ने किया है । आत्मकथनात्मक विधि में भी उसे पात्रात्मकता प्रदान कर शिल्पगत प्रयोग किए हैं । "हिज हाइनेस" , "जनानी सवारियां" , "तपोभूमि" , "रहस्यमयी" , "दिल्ली का व्यभिचार" जैसी औपन्यासिक रचनाएं तथा "दान" ,

"संयोग" , "कौड़ियों का हार" , "पांच रूपये का कर्ज " जैसी कहानियों में हमें लेखक की शिल्पगत प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं । अध्याय के अन्त भाग में लेखक की भाषिक-संरचना पर विचार करते हुए उनकी भाषागत उपलब्धियों को चिन्हित किया गया है । परिवेश तथा चरित्र-सृष्टि के निर्माण में भाषा के योग की चर्चा करते हुए लेखक की शैलीगत विशेषताओं को लक्षित किया गया है । ऋषभजी की भाषा में हमें सरसता, सरलता, सुबोधता, प्रवाहिता , शैलीगत सामासिकता व व्यासिकता , कथोपकथन की संक्षिप्तता, कथोपकथन में पात्रानुरूप भाषा का प्रयोग , सांकेतिकता , व्यंग्यात्मकता , मुहावरेदानी , लोकोक्तियों का प्रयोग , नवीन भाषाभिव्यंजना जैसे शैलीगत गुण मिलते हैं । नवीन भाषाभिव्यंजना में नये विशेषण, नये रूपक तथा नये उपमान आदि की चर्चा विशेषतः की गई है । शब्द-विचार के अन्तर्गत लेखक द्वारा प्रयुक्त संस्कृत , अरबी-फारसी तथा ठेठ या साधारण शब्द× भाषा के शब्दों की सोदाहरण चर्चा की गई है । अध्याय के अन्त में समीक्षागत निष्कर्षों को रखा गया है ।

अंतिम अध्याय उपसंहार का है जिसमें अध्ययन के निष्कर्षों को रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन की उपयोगिता, महत्व तथा उसकी भविष्यत् संभावनाओं को समेकित करने का उपक्रम है । प्रत्येक अध्याय के अन्त में यथासंभव निष्कर्ष दिए गए हैं । अध्ययन की समस्याओं के आकलन में मुख्यतया तो उपजीव्य ग्रंथों को ही आधार बनाया गया है , तथापि प्रथम अध्याय तथा अन्य अध्यायों में भी कहीं-कहीं तुलना की दृष्टि से अन्य उपन्यासों की चर्चा पाई जा सकती है ।

अनुसंधित्सु की अपनी शक्ति-मति और सीमाएं होती हैं , जिनसे सुज्ञ विद्वज्जन पूर्णरूपेण परिचित हैं । वस्तुतः मेरा यह कार्य तो आलोचना-कर्म की ओर उठा प्रथम कदम है । अभी तो बहुत कुछ जानना, समझना और सीखना है । तथापि मेरा यह कार्य अन्य अनुसंधित्सुओं के मार्ग को यदि किंचित् मात्र भी सुकर बना सका तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगी ।

पूर्वोक्त हिन्दी-गुजराती के विद्वान प्राध्यापक मेरे साहित्यिक संस्कारों के गठन में सहायक रहे हैं ।, बल्कि उनके कारण ही मेरा भावक विवेक-संपन्न हुआ है और मेरी चेतना उद्भूत हुई है , अतः उनको मैं शतशः वन्दन करती हूं । मैं गुरुजनों के दायरे को विस्तृत रूप में देखती हूं । मैं उन विद्वान लेखकों को भी अपने गुरु मानती हूं जिनके ग्रंथों को मैंने पढ़ा है और जिन्होंने मेरी लेखन-शैली को विकसित किया है । ऐसे लेखकों में डा. रामदरश मिश्र, डा. शशिभूषण सिंहल , डा. शिवकुमार मिश्र , डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय , डा. रणवीर रांग्रा, प्रभृति आते हैं जिनकी मेधा के आगे मैं प्रणमित हूं ।

कोई भी कार्य अपने स्नेही-संबंधियों तथा मित्रों-सहेलियों के साथ-सहयोग के तथा प्रोत्साहन से ही होता है । मेरे इस कार्य के संपादन में मेरी अभिन्न सहेली सन्ध्या , मेरी मां , मेरे पिता , मेरे गुरु भाई-बहनों में कु. लीना चौहाण , कु. इला मिस्त्री , डा. सलीम व्होरा (म. स. वि. वि तथा हिन्दी के प्रथम प्रज्ञाचक्षु अनुसंधित्सु) आदि के निरंतर प्रोत्साहन ने मेरी चेतना के दीपक में स्नेह-सिंचन किया है । अतः उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूं ।

हंसा मेहता लायब्रेरी , सेन्ट्रल लायब्रेरी , जयसिंह लायब्रेरी, दिल्ली नगरपालिका लायब्रेरी आदि के संचालकों एवं प्रबंधकों के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं ।

अन्त में पुनः एक बार अपने मार्गदर्शक डा. पारूकांत देसाई साहब को मैं प्रणमित होती हूं , क्योंकि उनके कुशल मार्गदर्शन के अभाव में यह कार्य मेरे लिए कदाचित् संभव न होता । उनकी अध्ययनशीलता और शोध-निष्ठा मेरे मार्ग को सदैव प्रशस्त करती रहेगी । वे प्रायः कहते रहते हैं कि सदाशयता से किया गया कोई भी कार्य निरर्थक नहीं जाता । उसकी कोई-न-कोई फलश्रुति होती ही है । मेरा यह कार्य भी असफल या अफल कि निष्फल नहीं जायेगा , इस आशा

के साथ मेरे प्रिय कवि नागाबाबा ॥नागार्जुन॥ की निम्न पंक्तियों को उद्धृत करने को मन विवश होता है --

"बहुत दिनों के बाद
अबकि मैंने जी-भर सूंघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से ताजे-टटके फूल
-- बहुत दिनों के बाद ।"

दिनांक : 5-1-1995

विनीत,

[signature] ।

॥ कु. गीता आनंदानी ॥